International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 3; May 2017; Page No. 30-32

प्रसाद और राकेश : इतिहास दृष्टि के संदर्भ में

विकास वर्मा

शोधार्थी, गौतम बुद्ध विश्व विद्यालय, ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश, भारत।

सरांश

हिन्दी नाटक और रंगमंच के इतिहास में जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश का विशिष्ट स्थान है। प्रसाद के नाटकों का पूरा परिवेश स्वाधीनता की चेतना से संपृक्त है। उनके लिए इतिहास का अन्वेषण सांस्कृतिक व्यक्तित्व से जुड़ी चीज़ है जिसे आज हम जड़ों की तलाश और सांस्कृतिक प्रश्न के रूप में प्रायः चर्चा का विषय बनाते हैं। वहीं, दूसरी ओर, मोहन राकेश के नाटक युग परिवेश की बदलती हुई दृष्टि का साक्षात्कार करते हैं जिसके पीछे एक सृजनात्मक खोज की प्रेरणा है जो बदलते हुए मानव–सम्बंधों और मानव–मूल्यों को केन्द्र में लाने से निर्मित होती है। दोनों नाटककारों की इतिहास दृष्टि को इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

मूल शब्द: जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, स्वाधीनता की चेतना, सांस्कृतिक व्यक्तित्व।

प्रस्तावना

जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश हिन्दी नाटक और रंगमंच के दो प्रस्थान–बिन्दु माने जाते हैं। प्रसाद ने जहां संवेदना को गहनता और व्यापकता के साथ व्यंजित किया, वहीं राकेश ने आज़ादी के बाद के भारतीय मध्यवर्ग की मनोस्थिति के चित्रण का प्रयास किया। दोनों नाटककार खुद को अलग–अलग स्थिति–परिस्थिति में विकसित करते हैं, लेकिन दोनों ने ही अपनी नाट्य–रचनाओं के माध्यम से अपने युग के सत्य की तलाश करने की कोशिश की है। अपनी इस नाट्य रचना–यात्रा के क्रम में इन दोनों नाटककारों ने पौराणिक–ऐतिहासिक कथानकों का उपयोग किया है। अपनी सृजन दृष्टि के अनुसार और अपने युग की आवश्यकताओं–अपेक्षाओं के अनुरूप इन्होंने इतिहास का प्रयोग अपने–अपने ढंग से और अपने विशिष्ट अंदाज़ में किया।

प्रसाद की अभिरुचि इतिहास के प्रति बहुत गहरी है। उनकी प्रायः सभी रचनाएँ या तो ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हैं या पौराणिक आख्यानों पर या ऐतिहासिक कल्पना पर। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उनकी वर्तमान में कोई रुचि नहीं है। इसके विपरीत, इतिहास की ओर जाने की वजह वर्तमान ही है। यह उनकी रचनात्मकता की खास विशेषता है कि वे इतिहास के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं को समझना और उन्हें हल करना चाहते हैं। उनके समय का भारत अंग्रेज़ों की दासता में था और राष्ट्रीय मुक्ति ही देश का सबसे बड़ा लक्ष्य था। प्रसाद की रचनाधर्मिता इसी लक्ष्य से अनुप्रेरित थी। लेकिन राष्ट्रीय मुक्ति की इस भावना का दायरा राजनीति तक सीमित नहीं था। उनकी नज़र में सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी राष्ट्रीय जागरण की आवश्यकता उतनी ही ज़रूरी थी। इसके लिए वे भारतीय इतिहास के ऐसे काल–खण्डों का चयन करते हैं जब लगभग इसी तरह के संघर्ष घटित हुए। 'स्कंदगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' जैसे नाटकों में ऐसे अनेक सन्दर्भ हमें प्राप्त होते हैं।

अपने इन ऐतिहासिक नाटकों में प्रसाद इतिहास के परिदृश्य को अक्षुण्ण रखते हुए अपनी सर्जनात्मक कल्पना का भी सुन्दर प्रयोग करते हैं। उनके नाटकों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय मिलता है। वे मानवीय सम्बंधों और संवेदनाओं तथा भारतीय दर्शन और संस्कृति के आधारभूत जीवन मूल्यों का बड़ा ही कुशल चित्रण काल्पनिक प्रसंगों के माध्यम से करते हैं। लेकिन इन प्रसंगों से कहीं भी इतिहास का मूल परिदृश्य खण्डित नहीं होता। इतिहास के क्षीण कलेवर को उन्होंने कल्पना से सजीव तो किया किंतु ऐतिहासिक निष्ठा की क्षति नहीं होने दी।

वहीं दूसरी तरफ, स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में इतिहास का वह स्वरूप देखने को नहीं मिलता जो प्रसाद और उनके युग के नाटकों में दिखाई देता है। नई धारा के नाटककारों ने नाटक के ऐतिहासिक–पौराणिक आधार को महत्व नहीं दिया। इतिहास–पुराण की अपेक्षा इनकी मूल निष्ठा अपने कथ्य के प्रति ही रही है। इनके यहाँ इतिहास–पुराण का स्वर मन्द और कथ्य को प्रकट करने वाली कल्पना का स्वर तीव्रतर हो गया है। इन नाटककारों ने इतिहास तत्व की रक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया, वरन् इतिहास को आधुनिक बोध और संवेदना का वाहक मात्र बनाया है। ये नाटककार आज़ादी के बाद के भारत की भिन्न परिस्थितियों में रह रहे थे तथा जीवन के परिवर्तित मूल्यों को व्यंजित करने के लिए इन्होंने अतीत का आश्रय लिया है। 'अंधा युग' में धर्मवीर भारती ने यही किया है तथा 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' के सन्दर्भ में मोहन राकेश ने इसी तरह के विचार प्रकट किए हैं। इसी कारण राकेश ने प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों के विपरीत अपने नाटकों में इतिहास की सुरक्षा पर ध्यान नहीं दिया। इतिहास उनके यहाँ मिथक बन गया है। अतः इतिहास की कड़ियाँ मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। युगानुरूप राकेश की समस्याएँ भी भिन्न हैं।

जहाँ तक इतिहास दृष्टि की बात है, वास्तव में प्रसाद अतीत को वर्तमान से कटा हुआ काल–खण्ड नहीं मानते थे। वे इतिहास की इस प्रक्रिया को समझते थे कि कैसे इतिहास की पुनरावृत्ति हुआ करती है। इस प्रक्रिया को दृष्टि में रखकर ही प्रसाद ने ऐतिहासिक नाटक रचे हैं। उनके अपने ही शब्दों में– ''.....इतिहास का अनुशीलन किसी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए अत्यंत लाभदायक होता है..... हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारी परम्परा के अनुकूल जो हमारी जातीय सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं, इसमें हमें पूर्ण सन्देह है।.....मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।''[1] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रसाद ऐतिहासिक इतिवृत्त में जातीय जीवन को स्पंदित करने वाले उन परम्पराशील आत्मिक प्रेरकों से हमारा साक्षात्कार कराना चाहते हैं जो हमारे वर्तमान जीवन को संस्कार देते हुए हमारी जय यात्रा को अग्रसर

करते हैं। आचार्य शुक्ल ने भी प्रसाद के नाटकों के विषय में कहा– ''यद्यपि प्रसाद के नाटक ऐतिहासिक हैं, पर उनमें आधुनिक आदर्शों और भावनाओं का आभास इधर–उधर बिखरा मिलता है। 'स्कंदगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' दोनों में स्वदेश प्रेम, विश्व प्रेम और आध्यात्मिकता का आधुनिक रूप रंग बराबर मिलता है।''[2]

प्रसाद की मुख्य चिंता राष्ट्रीय चेतना के विस्तार की थी तथा राष्ट्रीय भावना के इस सन्दर्भ को ध्यान में रखकर ही हम उनके ऐतिहासिक नाटकों को समझ सकते हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में राष्ट्रीयता की भावना धीरे–धीरे पनप रही थी। विभिन्न भाषाई, धार्मिक और क्षेत्रीय समुदायों में बँटे इस विशाल देश को राष्ट्रीयता के एक सूत्र में बांधना आसान काम नहीं था। प्रसाद ने राष्ट्रीय जीवन की इन्हीं समस्याओं को अपने नाटकों में उठाया है। 'स्कंदगुप्त' नाटक में जिस ब्राह्मण–बौद्ध मतभेद[3] का प्रसंग मिलता है, उसे और अन्य ऐसे ही प्रसंगों को आधुनिक सन्दर्भ में ही देखा जा सकता है। वस्तुतः प्रसाद के समय का भारत विषम सांस्कृतिक–राजनीतिक संकट से जूझ रहा था। अंग्रेज़ भारत पर अपना सांस्कृतिक वर्चस्व स्थापित करने का कलुषित षड्यंत्र रच रहे थे। ऐसे ही विषम संकट–काल में प्रसाद ने भारतीय सांस्कृतिक–आध्यात्मिक चेतना के स्वर को अपने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से बड़ी प्रखरता के साथ व्यंजित किया था। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य की एक पंक्ति है– '' भाषा ठीक करने से पहले मैं मनुष्यों को ठीक करना चाहता हूँ।''[4] मनुष्य को ठीक करने का अर्थ था ऐसे मनुष्य का निर्माण जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कटा हुआ न हो, जो भारत को एक राष्ट्र समझे।

दूसरी ओर, राकेश का इतिहास के प्रति नज़रिया अलग है। इतिहास के विषय में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं–''इतिहास या ऐतिहासिक व्यक्तित्व का आश्रय साहित्य को इतिहास नहीं बना देता। इतिहास तथ्यों का संकलन करता है, उन्हें एक समय–तालिका में प्रस्तुत करता है। साहित्य का ऐसा उद्देश्य कभी नहीं रहा। इतिहास के रिक्त कोष्ठों की पूर्ति करना भी साहित्य का उपलब्धि–क्षेत्र नहीं है। साहित्य इतिहास के समय से बंधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है, युग से युग को अलग नहीं करता, कई–कई युगों को एक साथ जोड़ देता है।''[5] इतिहास–संबंधी राकेश की समझ हमें यही बताती है कि उनके लिए इतिहास अतीत की घटनाओं का संकलन नहीं है बल्कि साहित्य के लिए इतिहास अतीत और वर्तमान को जोड़ने का माध्यम है। राकेश को कालिदास में इसी सम्बद्धता के सूत्र दिखाई देते हैं। यही कारण है कि वे इतिहास–व्यक्ति कालिदास की बात नहीं करते, उस कालिदास की बात करते हैं जो उनकी रचनाओं से बना है। स्वयं लेखक के अनुसार–'' 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास का जैसा भी चित्र है, वह उसकी रचनाओं में समाहित उसके व्यक्तित्व से बहुत हटकर नहीं है; हाँ, आधुनिक प्रतीक के निर्वाह की दृष्टि से उसमें थोड़ा परिवर्तन अवश्य किया गया है। यह इसलिए कि कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है, नाटक में वह प्रतीक उस अंतर्द्वंद्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आंदोलित करता है।.....हम भी आज उसमें से गुज़र रहे हैं।''[6] इतिहास और इतिहास–चरित्रों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखने की इस समझ को यदि हम ध्यान में नहीं रखेंगे तो राकेश के ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित इन नाटकों के अर्थ को भी नहीं समझ पाएंगे।

'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु देखने में तो ऐतिहासिक है, लेकिन यह पूरा नाटक आधुनिक संवेदना की शक्ति से निर्मित हुआ है। इसमें इतिहास का छौंक भर है। यहाँ कालिदास को ऐतिहासिक व्यक्तित्व समझकर उसके भीतर झाँकना लेखक के अनुसार बुद्धिमानी नहीं है, क्योंकि कालिदास रचनाकार मन के प्रतीक हैं। इतिहास का सहारा लेने के बावजूद यह नाटक वास्तव में रचनाकार की आंतरिक आवश्यकता और द्वंद्व का, आधुनिक मानव की विवशता का और समकालीन परिस्थिति में स्त्री–पुरुष सम्बंधों का अन्वेषण करता है। स्वयं राकेश ने लिखा है–''मैंने एक शब्द भी ऐसा नहीं लिखा जो वर्तमान से सम्बंधित नहीं है।''[7]

राकेश के दूसरे नाटक 'लहरों के राजहंस' का सम्बंध भी इतिहास से है। इसे अश्वघोष के काव्य 'सौन्दरनंद' की कथा के आधार पर निर्मित किया गया है। इतिहास को नाट्य वस्तु का आधार बनाते हुए भी अपनी बात कहने के लिए उससे बंधे रहने की अनिवार्यता राकेश स्वीकार नहीं करते। इस नाटक की प्रेरणा को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं– ''यहाँ नंद और सुन्दरी की कथा एक आश्रय मात्र है.....। नाटक का मूल अंतर्द्वंद्व उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में 'आषाढ़ का एक दिन' के अंतर्गत है।''[8] अतीतोन्मुखी दिखाई देने के बावजूद यह ऐतिहासिक नाटक नहीं है। नंद का ऐतिहासिक व्यक्तित्व कुछ भी हो, नाटक में वह ऐसे मन का प्रतीक है जो सम्पूर्णता में जीवन को जीना भी चाहता है और असमंजस के झोंकों के थपेड़े भी खा रहा है। अतः यहाँ भी आधुनिक व्यक्ति के द्वंद्वग्रस्त मानस की एक भाव कथा प्रस्तुत की गई है।

हालांकि इसमें कोई सन्देह नहीं कि रंग सृष्टि, शब्द शिल्प, अभिनय कौशल, अंक–विभाजन आदि अभिनय–सम्मत प्रायोगिक क्षमताओं में राकेश अत्यंत कुशल सिद्ध हुए और इससे प्रभावित होकर अधिकांश नाट्य समीक्षकों ने उनकी प्रशंसा की है, किंतु उनके नाटकों में प्रयुक्त ऐतिहासिक मिथकों को लेकर एक भिन्न आलोचनात्मक दृष्टि का विकास भी दिखाई देता है। इस दृष्टिकोण के समर्थक राकेश को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रसाद की परम्परा से नितांत भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार, प्रसाद के पास राष्ट्रीय आकांक्षा थी और उस वर्तमान आवश्यकता को उन्होंने जिस ऐतिहासिक सन्दर्भ में रूपायित किया, राकेश के नाटक उसका अक्षांक्ष भी प्रकट नहीं कर पाए।

इस विचार के अनुसार, राकेश ने प्रयोगों की आड़ में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मिथकों के साथ न्याय नहीं किया। प्रसाद की तरह वे ऐतिहासिक मिथकों का, युगीन अपेक्षाओं के अनुरूप संशोधन–परिवर्तन करके सकारात्मक उपयोग नहीं करते, वरन् अपनी मूल धुरी से ही उन्हें अलग कर देते हैं। कालिदास जैसे ऐतिहासिक काल–पुरुष को यथास्थितिवाद में समेट कर तथा भगौड़ा, कायर और आत्मसीमित दिखाकर राकेश उनके प्रति ऐतिहासिक न्याय नहीं करते। इसी प्रकार, गौतम बुद्ध को मात्र नारी के आकर्षण–अपकर्षण से जोड़कर वे उन जैसे महान् ऐतिहासिक मिथक के प्रति भी विवकेशीलता का प्रदर्शन नहीं करते। इस दृष्टिकोण के अनुसार, राकेश द्वारा परिलक्षित निजी मिथकीय व्यामोह न केवल भटकाता है बल्कि भारतीय अतीत की सांस्कृतिक अस्मिता को भी ठीक ढंग से प्रकट नहीं कर पाता।

इस प्रकार, प्रसाद और राकेश की इतिहास–दृष्टि पर तुलनात्मक रूप से विचार करते हुए अनेक बिन्दु उभरकर आते हैं। हम देखते हैं कि प्रसाद के नाट्य विधान का केन्द्रीय आधार राष्ट्रीय भाव बोध की अभिव्यक्ति है। उन्होंने इतिहास से अपने कथानक चुने क्योंकि वे जानते थे कि इतिहास में कोई भी जाति अपनी जातीय अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान खोजती है। इसीलिए उन्होंने ऐतिहासिक कथानकों में आधुनिक समस्याओं को संकेतों, प्रतीकों, बिम्बों–मिथकों आदि से संकेतित किया है। उनके ''नाटक अतीत से प्रारम्भ होते हैं, वर्तमान से मुठभेड़ करते हैं और भविष्य के लिए स्वप्न गढ़ते हैं।''[9] वे समकालीन परिवेश से प्रेरित तो हैं ही, उनमें एक साथ भूत, वर्तमान और भविष्य के कालातीत सत्य को साधने की छटपटाहट भी है। उनके चिंतन में समग्रता है। उनके नाटकों की मूल्य व्यवस्था में जहाँ स्त्री की सम्मान के साथ दायित्वपूर्ण अस्मिता है, जो 'ध्रुवस्वामिनी' जैसे नाटकों में स्पष्ट दिखाई देती है, वहीं

दलित–वंचित वर्ग के लिए कर्म–आधारित व्यक्तित्व की गारंटी है और अल्पसंख्यकों के लिए सामंजस्यपूर्ण दृष्टि के साथ समानता का विचार है। सबसे बढ़कर, उनमें मानवीय करुणा, अहिंसा, विश्व मैत्री के साथ गहरा विश्व बोध है। यहाँ तक कि उनके ऐतिहासिक नाटक आज के विविध समस्याओं से ग्रस्त भारत के लिए और भी प्रासंगिक नज़र आते हैं, क्योंकि आज 'चाणक्य' की चतुर दृष्टि, 'चन्द्रगुप्त' के शौर्य और 'पर्णदत्त' की देशभक्ति की और भी अधिक आवश्यकता है।

वहीं दूसरी तरफ, राकेश ने इतिहास के प्रति भिन्न दृष्टि अपनाई और ऐतिहासिक मिथकों को अपने युग सन्दर्भों के अनुरूप पुनःसृजित किया। ऐतिहासिक स्मृतियों में उनके नाटक गए लेकिन वे इतिहास नहीं हैं। आधुनिकता, समकालीनता और आज़ादी के बाद का मोहभंग, सम्बंधों की टूट–फूट, भीतर तक घायल और कराहता मनुष्य राकेश की कथावस्तु में विद्यमान है जो उनके समय के भारतीय मध्यवर्गीय जीवन का एक सत्य है। यह सच है कि राकेश का कैन्वस प्रसाद की तरह विराट, विशाल नहीं था और उन्होंने जीवन के उन्हीं अंशों को अपनी तूलिका से उकेरा जिनसे उनकी भली भांति पहचान थी, लेकिन फिर भी, इसमें कोई दो राय नहीं कि राकेश ने अपने नाटकों के माध्यम से ''नाटक में फिर से उस काव्य–तत्व और उन साहित्यिक गुणों को प्रतिष्ठित किया था, जिनको प्रसाद के बाद यथार्थवादी नाट्य परम्परा ने नाटक से निर्वासित कर दिया था।''[10]

अंत में हम कह सकते हैं कि इन दोनों नाटककारों की ऐतिहासिक कथानकों पर आधारित नाट्य रचनाएँ ''सर्जनात्मक भाव विस्तार के रत्नों से भरी वे खाने हैं, जिनके भीतर उतरना अपने आप में एक अद्वितीय अनुभव है।''[11] इनके नाटकों की तुलना से यह बात सहज ही सिद्ध हो जाती है कि दोनों की ऐतिहासिक–सांस्कृतिक दृष्टि में एक गहरी समानता है। असमानता के जो बिन्दु ऊपर से दिखाई देते हैं, वे भी आंतरिक संश्लिष्ट लयों में एक ऐसी एकता की अर्थ–ध्वनि देते हैं कि दोनों की रंग–संभावनाओं के उद्देश्य परस्पर विरोधी नहीं दिखाई देते।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. 'विशाख' नाटक, प्रथम संस्करण की भूमिका–जयशंकर प्रसाद।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 528।
3. स्कंदगुप्त, अंक 4, दृश्य 5, जयशंकर प्रसाद, पृ. 126–130।
4. चन्द्रगुप्त, अंक 1, दृश्य 7, जयशंकर प्रसाद, पृ. 70, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।
5. 'लहरों के राजहंस'–भूमिका, मोहन राकेश, पृ. 21, राजकमल प्रकाशन।
6. 'लहरों के राजहंस'–भूमिका, मोहन राकेश, पृ. 20, राजकमल प्रकाशन।
7. साहित्य और संस्कृतिः मोहन राकेश, पृ. 150।
8. 'लहरों के राजहंस'– भूमिका, मोहन राकेश, पृ. 22, राजकमल प्रकाशन।
9. 'प्रसाद के नाटकों की रेंज', रंगानुभव के बहुरंग, पृ. 79, प्रो. रमेश गौतम।
10. 'लहरों के राजहंस'– भूमिका, डॉ सुरेश अवस्थी, पृ. 18, राजकमल प्रकाशन।
11. जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश की रंग दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन, प्रस्तावना, पृ. 9, डॉ. रीता रानी पालीवाल।